गुप्तकाल में गुप्तचर– एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ. अवनीन्द्र कुमार,
पी–एच.डी.,

बी.आर.ए.बी.यू., मुजफ्फरपुर (बिहार)

गुप्तचर किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। वह केवल देश की आन्तरिक व्यवस्था तथा उससे सम्बद्ध पदाधिकारियों पर ही दृष्टि नहीं रखता है बल्कि अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। गुप्तचर का अर्थ है गुप्त रूप से काम करने वाला। वह या तो तरह–तरह का वेश धारण कर अपेक्षित सूचनाएँ एकत्रित करता है अथवा किसी एक स्थान पर अपना वास्तविक परिचय छिपाकर काम करता है। राजा स्वयं सम्पूर्ण राज्य के कोने–कोने में घटनेवाली घटनाओं पर दृष्टि नहीं रख सकता, इसीलिए वह गुप्तचरों पर निर्भर रहता है। गुप्तचरों को राजा की आँख कहा गया है। अतः राजा अपने राज्याधिकारियों तथा पड़ोसी राज्यों पर नजर रखने के लिए गुप्तचरों को नियुक्ति करता था। ये गुप्तचर राज्य में पदाधिकारियों के नैतिक आचरण तथा संभावित विद्रोहों की पूर्व सूचना राजा को देता था तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को अपने स्वामी के अनुकूल बनाता था। प्रस्तुत आलेख में गुप्तकाल (275–550 ई.) के गुप्तचर–व्यवस्था का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है जो प्राचीन भारतीय साहित्य, लेखों तथा विदेशी लेखकों से प्राप्त जानकारी पर आधारित है।

मौर्यों के बाद प्राचीन भारत में गुप्तों ने ही विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की। भारतीय इतिहास में गुप्तकाल को स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में भारतीय राजनीति और संस्कृति चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी। यद्यपि मौर्य साम्राज्य के विघटन के बाद कई सौ वर्षों तक उत्तर भारत का राजनीतिक एकीकरण संभव नहीं हो सका। परन्तु गुप्तवंश के शासकों ने ही मौर्यो की तरह पुनः उत्तर भारत को एक राजनीतिक सूत्र में बाँधने में सफलता प्राप्त की। यद्यपि गुप्त साम्राज्य का उदय कुड्डाण साम्राज्य के ध्वंसावषेड्डों पर हुआ। सम्भवतः ये लोग कुड्डाणों के सामन्त थे और इन्होंने कुषाणों के बाद उनका स्थान ले लिया। उत्तर भारत का एक बड़ा भू–भाग चक–मुरण्डों के ंचासन में आ गया, जो 250 ई. तक ंचासन करते रहे। उसके बाद 275 ई. के आस–पास प्रयाग के निकट कौषाम्बी में गुप्त वंष अस्तित्व में आया। इस वंष का संस्थापक श्री गुप्त (240–280 ई.) था। इसके बाद इसने 'महाराज' की उपाधि धारण की। इस प्रकार गुप्त साम्राज्य की स्थापना होते ही एक बार पुनः मगध एवं पाटलिपुत्र का महत्त्व बढ़ा। गुप्त वंष के अभिलेखों में महाराज 'श्री गुप्त' को गुप्तों का आदि पुरूड्ड कहा गया है।[1] इस वंष का द्वितीय ंचासक श्रीगुप्त का पुत्र घटोत्कच (280–320 ई.) था। घटोत्कच का पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम (320 ई.) इस वंष का तीसरा और पहला ऐसा शासक हुआ जिसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि ग्रहण की। चन्द्रगुप्त प्रथम का पुत्र समुद्रगुप्त (335–380 ई.) था।[2] समुद्रगुप्त ने स्वयं को प्रयाग प्रशस्ति में श्रीगुप्त का प्रपौत्र कहा है। समुद्रगुप्त के बाद क्रमषः रामगुप्त, चन्द्रगुप्त, द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त प्रथम महेन्द्रादित्य (415–455 ई.), स्कन्दगुप्त(455–467 ई.) राजगद्दी पर वैठा। किन्तु स्कन्दगुप्त के मृत्यु के पष्चात् गुप्तों की अवनति प्रारंभ हो गई। यद्यपि स्कन्दगुप्त के बाद भी गुप्त वंष का अस्तित्व था और इसके बाद क्रमषः पुरूगुप्त, नरसिंह गुप्त बालादित्य, कुमारगुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त, वैन्यगुप्त, भानुगुप्त बालादित्य और इस वंष के अन्तिम ंचासक कुमारगुप्त तृतीय आदि ने इस साम्राज्य के अस्तित्व को बनाये रखने की दिषा में अपनी–अपनी भूमिका निभायी। किन्तु छठी ंचताब्दी के मध्य तक आते–आते गुप्तों का

न्याासन उनकें हाथों से चले गए। वैसे कुमार गुप्त तृतीय के बाद विष्णु गुप्त का नाम मिलता है परन्तु इस सम्बन्ध में बहुत विवाद है।[3] छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में मगध पर उत्तर गुप्तवंश का शासन रहा। कन्नौज की राजगद्दी शक्तिशाली मौखरिवंश के अधीन रहा। इन्हीं राजवंशों का समसामयिक थानेश्वर का पूष्यभूति राजवंश भी था। सातवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध थानेश्वर के हर्षवर्धन का शासन काल था। इस समय मौखरियों तथा उत्तर गुप्तवंश दोनों की शक्ति समाप्त हो गयी थी। इन सभी राजवंशों का राजनीतिक इतिहास मुख्यतः उनके लेखों पर आधारित है। बल्कि इनके लेख ही इन राजवंशों के नरेश की उपलब्धियों को जानने के मुख्य स्रोत हैं।

इन लेखों के अतिरिक्त इस काल की प्रशासनिक, सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था की जानकारी इस काल के साहित्यिक ग्रन्थों तथा विदेशी विवरणों से होती है। गुप्तकालीन साहित्य भंडार अत्यन्त समृद्ध हैं। कालिदास, विशाखदत्त, दण्डिन्, वात्स्यान, शूद्रक, वराहमिहिर आदि लेखकों की कृतियाँ गुप्तचर व्यवस्था के अध्ययन के लिये महत्वपूर्ण हैं। इस सम्बन्ध में कालिदास के नाटक (मालविकाग्निमित्रम्, अभिज्ञान शाकुन्तलम्, रघुवंशम्), विशाखदत्त के नाटक (देवीचन्द्रगुप्तम, मुद्राराक्षस) तथा शूद्रक के नाटक (मृच्छकटिकम्) विशेष उल्लेखनीय हैं। कामन्दकीय नीतिसार, कतिपय स्मृतियाँ एवं पुराण आदि अन्य साहित्यिक स्रोत हैं जिनसे गुप्तकलीन इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। कौमुदी महोत्सव नाटक भी इस काल की महत्वपूर्ण रचना मानी जा सकती है जिससे इस काल के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कौटिल्य के ‘अर्थशास्त्र’ अथवा ‘महाभारत’ जैसा कोई ग्रन्थ इस काल में नहीं रचा गया, जिसमें गुप्तचर–व्यवस्था की विशद् चर्चा की गयी हो। फिर भी जो कुछ थोड़ा–बहुत संकेत साहित्यिक स्रोतों में विदेशी विवरण, फाह्यान का यात्रा वर्णन अथवा लेखों में मिलता है उसी के आधार पर गुप्तकालीन गुप्तचर–व्यवस्था के सम्बन्ध में अनुमान किया गया है।

कालिदास की रचनाओं से यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन भारत में गुप्तचर–व्यवस्था का अस्तित्व था। तत्कालीन समय में भी आज की तरह गुप्तचर–व्यवस्था प्रशासनिक व्यवस्था का एक आवश्यक अंग थी।[4] राज्य में चारों ओर गुप्तचरों का जाल फैला हुआ था। राजा के आदेशानुसार उसे सभी घटनाओं की सूचना देनी पड़ती थी।[5] सम्पूर्ण राज्य में फैले हुये इन गुप्तचरों को केवल शत्रुओं पर ही नहीं बल्कि मित्रों पर भी दृष्टि रखनी पड़ती थी। इतना ही नहीं वे इस बात की सूचना राजा को देते थे कि प्रजा राजा के विषय में क्या सोचती है तथा उसके कार्यों के विषय में कैसे विचार रखती है। रघुवंश के अनुसार प्रभु ने भद्र नामक गुप्तचर से पूछा कि उसके चरित्र के विषय में कोई अफवाह तो नहीं फैली हुई है। गुप्तचरों को शत्रु राज्य में भेजा जाता था ताकि महत्त्वपूर्ण सूचनायें एकत्रित कर राजा का दे। ये गुप्तचर एक दूसरे के प्रति अनजान रहते थे और अनजाने में एक दूसरे के विरूद्ध गुप्तचरी करते थे। मनु, कौटिल्य आदि अनेंक राजनीतिक मनीषियों ने कहा है कि गुप्तचरों की नियुक्ति में सावधानी बरतनी चाहिए[6], एक गुप्तचर दूसरे गुप्तचर से परिचित न हों। प्रत्येक का सीधा सम्पर्क राजा अथवा राजा के किसी विश्वासी उच्च राज्याधिकारी से हो।

याज्ञवल्क्य स्मृति में भी गुप्तचरों का वर्णन हुआ है। इस स्मृति के ‘राजधर्म–प्रकरण’ खण्ड में गुप्तचरों का वर्णन मिलता है जो रघुवंश के दिये गये वर्णन का पूरक प्रतीत होता है। ऐसा इसलिये प्रतीत होता है कि डी.के.गांगुली ये दोनों ही ग्रन्थों को एक ही काल की रचनायें माना हैं।[7] याज्ञवल्क्य की रचना से ज्ञात होता है कि गुप्तचरों का मुख्य कार्य अपने राजा को सामन्तों एवं

अन्य राजाओं की गतिविधियों की सूचना देना था। इसके अनुसार गुप्तचरों से अपेक्षित था कि वे उसके अधिकारियों पर भी दृष्टि रखें ताकि उन्हें पुरस्कृत अथवा दण्डित किया जा सके, जिसके वे हकदार हों।[8]

कालिदास एवं याज्ञवल्क्य दोनों ने ही इस बात का उल्लेख किया है कि गुप्तचरों को यह विशेषाधिकार प्राप्त था कि वे राज्य के सर्वोच्च अधिकारी या राजा के समक्ष किसी भी समय जा सकते थे। कालिदास गुप्तचरों को 'राजनीतिक ज्योति की किरणें' (दीधितेः) कहता है। उसके अनुसार किसी वैसे राजा के लिये अपने राज्य की सीमा के अन्दर सभी कुछ देखना संभव है अगर वह अपने गुप्तचरों को राजनीतिक ज्योति के रूप में राज्य के कोने–कोने में भेजता है।

गुप्तचर–व्यवस्था की रूप–रेखा पर कामन्दक ने विशद् रूप से विचार किया है। कामन्दक ने गुप्तकाल में ही अपने नीतिशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ की रचना की जिसे 'कामन्दकीय नीतिसार' के नाम से जाना जाता है। इसके 'दूत–चर विकल्प प्रकरण' में गुप्तचरों का विस्तृत विवरण मिलता है। कामन्दक ने कौटिल्य का ही अनुकरण किया है। उसने भी गुप्तचरों के दो वर्गों का उल्लेख किया है– एक 'संस्था' तथा दूसरा 'संचार'[9]। कामन्दक ने भी कौटिल्य की तरह 'संस्थ' को पाँच वर्गों में विभाजित किया है। ये हैं व्यापारी, वणिक (वणिग्वैदेहक इति द्वितीय नामा), कृषक (कृषिवलो गृहपति इति द्वितीया नामा), तापती लिंगी मुण्डोजटिलोत तापसः भिक्षुकतस्योदास्थित इति तथा अध्यापक (अध्यापकोः छात्रवृत्या स्थितः)। कौटिल्य ने कापटिक, उदास्थित, गृहपति, वैदेहक तथा तापस का उल्लेख संस्थ वर्ग के गुप्तचर के पाँच प्रकारों के रूप में किया है।[10] कामन्दक एवं कौटिल्य के वर्गीकरण में अद्‌भुत समानता है। ऐसा लगता है कि कामन्दक ने कौटिलीय अर्थशास्त्र को ही आधार मानकर अपने नीतिसार की रचना की। कामन्दक के नीतिसार में कोई विशेष नवीनता नहीं है। इसका कारण शायद कौटिल्य जैसा महान चिन्तक का नहीं होना था। बल्कि यह कहा जा सकता है कि कामन्दक कौटिल्य के राजनीति संबंधी मान्यताओं का अनुयायी था।

कौटिल्य ने जबकि 'संचारों' को तीन वर्गों में बाँटा है। कामन्दक इन्हें पाँच वर्गों में बाँटता है। ये पाँच वर्ग हैं– साहसी तीक्ष्ण, शिक्षा माँगती भिक्षुणी, प्रविणता, सहपाठी स्त्री तथा विष देने वाला रसद।[11] कौटिल्य ने संचारों को केवल चार वर्गों में बाँटा है जैसे– सत्रिण (सहपाठी गुप्तचर), तीक्ष्ण (आततायी), रसद (विष देनेवाला) तथा परिव्राजिका (सन्यासिन् अथवा भिक्षुणी)[12]। कौटिल्य से कामन्दक इतना ही अन्तर करता है कि उसने परिव्राजिका को भी दो वर्गों में बाँट दिया है– भिक्षुणी तथा प्रव्रजिता। इन गुप्तचरों के महत्व पर बल देते हुए कामन्दक इस बात का उल्लेख करता है कि गुप्तचर रूपी आँखें होने के कारण राजा नींद में जगा हुआ रहता है।[13] अनेंक मनीषियों ने गुप्तचरों को राजा की आँखे कहा हैं और चूँकि ये राजा के प्रति अत्यन्त निष्ठावान् होते हैं, राजा की आँखे बनकर सम्पूर्ण राज्य पर दृष्टि रखते हैं। अतः राजा स्वयं सो रहा हो अथवा जाग रहा हो इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। राजा को प्रत्येक पल–पल की सूचना गुप्तचरों के माध्यम से मिलती रहती है।

कामन्दक ने गुप्तचरों के गुणों एवं कार्यों पर प्रकाश डाला है।[14] उसके अनुसार गुप्तचरों में मनुष्य के भावों एवं संकेतों को देखकर उसके हृदय के अन्दर ही बातें जान लेने की योग्यता होनी चाहिये। उसे अच्छी स्मरण–शक्ति का स्वामी होना चाहिये। साथ–ही–साथ उसे मधुरभाषी, कष्ट सहने की शक्ति, परिश्रमी, वाक्‌पटुता तथा तेज जैसे गुणों से सम्पन्न होना चाहिये। यें गुप्तचरों के स्वाभाविक गुण प्रतीत होते हैं।

इन गुणों के अभाव में कोई गुप्तचर अपना कार्य सफलतापूर्वक नहीं कर सकता। कामन्दक के अनुसार ये तपस्वियों, लिगिंनों, कपटी तथा व्यापारियों के रूप में विचरण करते हुये उपयोगी सूचनायें एकत्रित करते थे। कामन्दक ने भी इस बात का उल्लेख किया है कि ये गुप्तचर सावधानी पूर्वक अपने बीच सूचनाओं का आदान–प्रदान गूढ़ संकेतों, चिन्हों तथा भावों द्वारा करते थे।

कामन्दक ने 'संचार' प्रकार के गुप्तचरों में भी सूचनाओं के आदान–प्रदान होने का संकेत दिया है। अर्थात् ये एक–दूसरे से परिचित होते थे। जबकि अन्य नीतिकारों ने इनको आपस में बिल्कुल अनजान होने पर बल दिया है। गुप्तचरों का आपस में अनजान होना गुप्तचर जैसी संस्था के लिय आवश्यक था। चूँकि इसमें किसी एक गुप्तचर के पकड़े जाने पर सभी गुप्तचर के पकड़े जाने का भय नहीं रहता है। परन्तु कामन्दक ने इन गुप्तचरों के बीच संकेतों के आदान–प्रदान होने का उल्लेख किया है। शायदः कामन्दक ने किसी एक व्यक्ति के नेतृत्व में कार्य करनेवाले गुप्तचरों के संदर्भ में इस बात का उल्लेख किया है।

कामन्दक ने भी सूचना का आदान–प्रदान गूढ़ संकेतों में करने का परामर्श दिया है। अर्थात् गुप्तचरों को गूढ़ लेख का प्रयोग करना चाहिये। ऐसा अधिकांश नीतिकारों ने परामर्श दिया है। एक ओर तो गुप्तचरों से अच्छी स्मरणशक्ति की अपेक्षा की जाती थी। तो दूसरी ओर गूढ़ संकेतों में अथवा चिन्हों में संदेश देने की बात कहीं गयी है। अर्थात् गुप्तचरों से अपेक्षा की जाती थी कि वह सभी सूचनाओं को स्मरण रखकर राजा तक पहुँचाये। परन्तु उसको लिखित संदेश ही आदि भेजना हो तो गूढ़ संकेत अथवा चिन्हों के प्रयोग करने का परामर्श नीतिकार देता है।

किशोरिका अथवा वज्जिका कृत 'कौमुदी महोत्सव' नाटक से गुप्तचर व्यवस्था के सम्बन्ध में अनुमान करने में सहायता मिलती है। यह नाटक एक गुप्तकालीन रचना है जो राजनीतिक पृष्ठभूमि पर लिखी गयी है। इस नाटक के नायक चण्डसेन का तादात्म्य कतिपय विद्वान चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ स्थापित करते हैं। इस नाटक में एक मगध कुल का वर्णन मिलता है जिसकी राजधानी कुसुमपुर अथवा पाटलिपुत्र थी। मगध पर इस नाटक के अनुसार सुन्दर वर्मा प्रतिष्ठित था जो सन्तानहीन था। चण्डेसन इस सुन्दर वर्मा का दत्तक पुत्र था। परन्तु गोद लेने के पश्चात् सुन्दर वर्मा को कल्याण वर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कल्याण वर्मा के उत्पन्न होने के पर चन्डसेन के हाथों से मगध की राजगद्दी निकल गयी। सुन्दरवर्मा के वृद्धावस्था को प्राप्त होते ही चन्डसेन ने उन्हें मारकर पाटलिपत्रु पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। परन्तु कल्याण वर्मा की सुन्दर वर्मा के प्रति निष्ठावान सभासद एवं कर्मचारियों ने चण्डसेन के हाथों मरने से बचा लिया। कल्याण वर्मा पाटलिपुत्र से बाहर कुशल धात्रियों की देख–रेख में व्यस्क हुआ। राजधानी में सुन्दर वर्मा का स्वामिभक्त मंत्रगुप्त नामक प्रधानमंत्री और कुंजरक नामक सेनापति अवसर की खोज में था ताकि कल्याण वर्मा को पाटलिपुत्र की राजगद्दी पर प्रतिष्ठित किया जा सके। उन्होंने पाटलिपुत्र के सीमावर्ती प्रत्यन्तपालों को विद्रोह के लिये उकसाया। उनकी प्रेरणा पर शबर–पुलिन्दों ने भी मगध की सीमा पर विद्रोह कर दिया। उनके दमन के हेतु चण्डसेन को पाटलिपुत्र से बाहर जाना पड़ा। इस अवसर पर लाभ उठाकर पौरजनपद की सहायता से सेना संगठित हो गयी और कल्याण वर्मा को विश्वस्त संदेशवाहकों द्वारा पाटलिपुत्र लाया गया। उसे पाटलिपुत्र की राजगद्दी पर प्रतिष्ठित किया गया। कल्याण वर्मा की स्थिति सुदृढ़ करने के लिये उसका विवाह मथुरा नरेश कीर्तिसेन की पुत्री कीर्तिमती के साथ कर दिया गया। पाटलिपुत्र की राजगद्दी पुनः पाने के प्रयास में चण्डसेन अपने बन्धु–बान्धवों के साथ मारा गया।

कौमुदी महोत्सव नाटक के नायक चण्डसेन का तादात्म्य हम भले ही चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ स्थापित करने कें कठिनाई अनुभव करें[15] परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि इसमें वर्णित राजनीतिक व्यवस्था अथवा सामाजिक चित्रण गुप्तकालीन है। इस नाटक के कथानक के आधार पर तत्कालीन गुप्तचरों की स्थिति का थोड़ा–बहुत अनुमान किया जा सकता था। हम देखते हैं कि सुन्दरवर्मा की मृत्यु के पश्चात् राज्य के प्रधानमंत्री एवं सेनापति तथा अन्य स्वामिभक्त राज्याधिकारी राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी को चण्डसेन के प्रकोप से बचा ले जाने में सफलता प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं उसके पूर्ण व्यस्क होने तक उसका लालन–पालन करते हैं तथा उसकी जानकारी चण्डसेन से छुपाये रखते हैं। इस कथा से स्पष्ट है कि राजा की पकड़ राज्य की गुप्तचर– व्यवस्था पर ढीली पड़ गयी थी। अथवा गुप्तचरों का नियंत्रण प्रधानमंत्री के हाथों में थे। यदि राजा के अपने विश्वासी गुप्तचर होते तो कल्याण वर्मा के जीवित होने तथा राजधानी में प्रधानमंत्री एवं सेनापति द्वारा उसके विरूद्ध षड्यंत्र में लिप्त होने की सूचना उसे अवश्य देते।

'मुद्राराक्षस' से भी इस बात की जानकारी मिलती है कि किस प्रकार शत्रुओं के बीच फूट डालने में ये गुप्तचर महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। गुप्तचर इस बात की भी जानकारी प्राप्त करते थे कि राज्य या अन्तर्राज्य में क्या हो रहा है। इस नाटक में चाणक्य द्वारा नियुक्त गुप्तचर का उल्लेख हुआ है, जिसका नाम निपुणक था।[16] वह पाटलिपुत्र नगर में एक साधु के रूप में विचरण करता था और इस दौराने उसे जो कुछ ज्ञात होता था उसकी जानकारी अपने स्वामी को देता था। चाणक्य के सिद्धार्थक नामक एक दूसरे गुप्तचर का भी उल्लेख इस नाटक में हुआ है। सिद्धार्थक अपने स्वामी को योजना के अनुसार मगध के अमात्य राक्षस की सेवा में नियुक्ति पाने में सफल रहा। उसका कार्य था राक्षस की योजनाओं पर दृष्टि रखना। इतना ही नहीं उसने सफलतापूर्वक राक्षस के विरूद्ध मलयकेतु के मन में संदेह का बीज बोया। मगध के अमात्य राक्षस के गुप्तचर विराधगुप्त का भी उल्लेख इस नाटक में हुआ है जो एक सपेरा के रूप में सूचनायें एकत्र करता था। इस नाटक से यह स्पष्ट होता है कि एक ओर चाणक्य की कूटनीति थी तो दूसरी ओर राक्षस की कूटनीति थी। इन दोनों का टकराव ही इस नाटक की विषय–वस्तु है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि गुप्तचरों की बागडोर राजा के हाथ में न होकर उसके अमात्य के हाथों में थी। चन्दगुप्त मौर्य की ओर से चाणक्य अपने गुप्तचरों का संचालन करता था तो दूसरी ओर राक्षस अपने गुप्तचरों को निर्देश देता था। अर्थात् मुद्राराक्षस के साक्ष्य से भी स्पष्ट संकेत मिलता है कि गुप्तचरों का संचालन अमात्य अथवा प्रधानमंत्री के हाथों में था न कि राजा के। कौटिलय तथा अन्य स्रोतों से गुप्तचरों के छद्म वेश में अपना कार्य करने की जानकारी मिलती है। मुद्राराक्षस से भी ज्ञात होता है कि चाणक्य अथवा राक्षस के गुप्तचर छद्म वेश में अपना कार्य करते थे। अनेक छद्म वेशों का उल्लेख हुआ है, जैसे साधु, भिक्षु, सपेरा, नर्तकी, व्यापारी आदि।

विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' एवं शूद्रक के 'मृच्छकटिकम' नाटकों में गुप्तचरों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचनायें मिलती हैं। ये दोनों ही ग्रन्थ गुप्तकालीन रचनायें हैं।[17] अतः इनमें वर्णित राजनीतिक अवस्था तत्कालीन राजनीतिक अवस्था से प्रेरित मानी जा सकती है। मृच्छकटिकम नाटक में इस बात की जानकारी मिलता है कि सूचनायें एकत्रित करने के लिय मार्गों पर गुप्तचर निरन्तर घूमा करते थे, ताकि सूचनायें एकत्रित कर राजा तक पहुँचा सके। मृच्छकटिकम में न्यायाधीश को 'अधिकरणिक' कहा गया है। इसकी सहायता के लिये राजकीय कर्मचारी होते थे। उदाहरणार्थ इसे मंत्रणा प्रदान करने वाले राजपुरूष, दूत, गुप्तचर

आदि। अधिकरणिक के गुणों का उल्लेख भी मृच्छकटिकम में हुआ है।[18] इन गुणों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि अधिकरणिक गुप्तचरों की सहायता वस्तुस्थिति जानने के लिय अवश्य लेता होगा ताकि कोई अन्यायपूर्ण फैसला न हो जाय। चूँकि जहाँ तक न्याय–प्रक्रिया का प्रश्न है, किसी भी निर्दोष को सजा हो जाना अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है।

यदि हम गुप्तवंश के नरेशों की उपलब्धियों पर ध्यान दें तो गुप्तचरों की सक्रियता का अनुमान कर सकते हैं। चन्द्रगुप्त प्रथम के द्वारा एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना हुई। अगर हम कौमुदी महोत्सव नाटक की राजनीतिक पृष्ठभूमि गुप्तों के उदय की पृष्ठभूमि नहीं मानें तो इस विषय में सही अनुमान करना कठिन है। परन्तु इतना तो निश्चित है कि विश्वसनीय गुप्तचरों ने गुप्तों के उदय में अपना योगदान दिया होगा। चन्द्रगुप्त प्रथम के पुत्र समुद्रगुप्त ने विशाल साम्राज्य की स्थापना की, जिसके लिये उसमे अनेंक सैनिक अभियान किये। इन अभियानों की सफलता में अगर गुप्तचरों के योगदान की कल्पना करें तो यह अनुचित नहीं होगा। स्वयं उसका राज्या–रोहण संघर्षपूर्ण माना जाता है। कतिपय इतिहास के विद्वान 'काच' के स्वर्ण सिक्कें तथा इलाहाबाद स्तम्भ–लेख के आधार ऐसा मानते हैं।[19] समुद्रगुप्त एवं काच इन दोनों भाइयों के बीच उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध हुआ था ऐसा अनुमान किया जाता है। संभवतः 'काच' के पक्ष में अच्युत, नागसेन एवं कृतकुलण जैसी शक्तियाँ थीं, जिन्हें समुद्रगुप्त ने पराजित कर राजगद्दी पायी। अच्युत एवं नागसेन को समुद्रगुप्त ने पुनः पराजित किया चूँकि जिन नौ आर्यावर्त के राजाओं को समुद्रगुप्त ने उन्मूलित किये उनमें अच्युत एवं नागसेन के नाम मिलते हैं। इन नौ राजाओं की पराजय के सिलसिले में गुप्तचरों के योगदान का अनुमान किया जा सकता है।

समुद्रगुप्त के दक्षिणी अभियान में गुप्तचरों ने अवश्य ही महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी। इस समय वाकाटकों का तटस्थ रहना ही इस बात का संकेत देता है। दक्षिण के बारह राजाओं को समुद्रगुप्त ने पराजित किया परन्तु बाद में मुक्त कर दिया और उनसे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया। इस सम्बन्ध में समुद्रगुप्त ने सम्पूर्ण दक्षिणी क्षेत्र में गुप्तचरों को स्थापित किया होगा ताकि ये उन पर दृष्टि रखें और उनकी राजनीतिक गतिविधियों की सूचना दें। इनके अतिरिक्त आटविक राज्यों, प्रत्यन्त राज्यों तथा विदेशी राजाओं के मन में गुप्त सम्राटों के शक्ति के प्रति भय उत्पन्न करने में गुप्तचरों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी। संभवतः इनका ही कार्य रहा होगा कि जो इन शक्तियों ने स्वेच्छा से समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पश्चिमी क्षत्रपों की शक्ति को सदा के लिये समाप्त किया। इन शक क्षत्रपों के विरूद्ध चन्द्रगुप्त द्वितीय का सैनिक अभियान एक लम्बे अरसे तक चला, जिसके कारण मगध के सन्धिविग्रहिक वीरसेन शक को विदिशा में बहुत दिनों तक रूकना पड़ा। पश्चिमी क्षत्रपों के विरूद्ध सफल सैनिक अभियान के लिये वाकाटकों की तटस्थता आवश्यक थी। अपने दक्षिण अभियान के समय समुद्रगुप्त ने भी इन्हें तटस्थ करने पर बाध्य किया था। चन्द्रगुप्त ने तो वाकाटकों के साथ स्थायी मित्रता स्थापित की। इस दिशा में गुप्तचरों ने ही महत्वपूर्ण भूमिका निभायी होगी।

कुमार गुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात् मगध की राजगद्दी के लिये उसके दो पुत्र पुरूगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के बीच उत्तराधिकार सम्बन्धी युद्ध हुआ, ऐसा कतिपय विद्वानों की मान्यता है। स्कन्दगुप्त ने अपने पिता के राज्यकाल में ही पुष्यमित्रों के विद्रोह एवं हूणों के आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया था।[20] इस अभियान के सिलसिले में भी गुप्तचरों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया होगा ऐसा अनुमान किया जा सकता है। वैसे गुप्तों जैसी शक्तिशाली साम्राज्यवादी नरेश के विरूद्ध पुष्यमित्रों का

विद्रोह एवं हूणों जैसी विदेशी जाति का आक्रमण इस बात का संकेत देता है कि इस समय तक गुप्तों की शक्ति क्षीण पड़ गयी थी। संभव है कि गुप्तों के अधीन गुप्तचर व्यवस्था अपनी कार्य–कुशलता खोने लगी हो या उत्तराधिकार के लिये युद्ध के फलस्वरूप गुप्तचरों की निष्ठा में दरार पड़ गई हो। हालांकि इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्कन्दगुप्त ने हूणों के प्रथम आक्रमण का सफलतापूर्वक निराकरण किया। परन्तु कुमारगुप्त प्रथम के बाद पुरूगुप्त एवं स्कन्दगुप्त के बीच उत्तराधिकार के लिए हुए संघर्ष के कारण गुप्त सम्राटों की शक्ति धीरे–धीरे क्षीण पड़ने लगी थी। संभवतः गुप्तचर व्यवस्था भी ढ़ीली पड़ गयी होगी। अन्यथा हूणों के बढ़ते हुए कदम मगध तक नहीं पहुँच पाते और नरसिंह गुप्त बालादित्य को हूणों का सामना नहीं करना पड़ता। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके परवर्ती गुप्त सम्राटों ने भी गुप्तचर–व्यवस्था को संगठित नहीं किया। अतः गुप्त राज्य के विघटन के साथ–साथ प्रशासनिक व्यवस्था भी ढ़ीली पड़ गयी जिसके कारण गुप्तचर व्यवस्था भी अपना महत्त्व खोने लगी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल में गुप्तचर के संदर्भ में जितने भी मनीषियों ने अपने–अपने विचार प्रस्तुत किये हैं उनमें कामन्दक ने गुप्तचर–व्यवस्था की जो रूप–रेखा की व्याख्या अपने नीतिसार में प्रस्तुत किया है वह अत्यन्त ही उच्च कोटि की है और सफल रही। कामन्दक की गुप्तचर सम्बन्धी नीति तत्कालीन सम्राटों के लिए तो महत्वपूर्ण था ही, आधुनिक खुफिया तंत्र के लिए भी उपादेय है। कामन्दक की गुप्तचर सम्बन्धी नीति के आलोक में आज भी कई खुफिया तंत्र संचालित हो रहे है। परन्तु धीरे–धीरे इस गुप्तचर–व्यवस्था में सम्भवतः ढ़ीलापन आता गया। ऐसा शायद केन्द्रीय शक्ति के क्षीण पड़ने के कारण हुआ। वैसे गुप्त साम्राज्य के पतन होते ही साम्राज्यों का युग समाप्त हो गया। फिर भी भारत में कई छोटे–बड़े राजवंशों का युग आया परन्तु गुप्तवंश एवं उसके अयोग्य सम्राटों ने गुप्तचर–व्यवस्था की प्रासंगिकता धुमिल दी।

संदर्भ सूची –

1. नाहर, रतिभानु सिंह, प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, किताब महल, 15 थार्नहिल रोड़, इलाहाबाद, 1988, पृ. 364; झा, द्विजेन्द्रनारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन : प्राचीन भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेषालय, दिल्ली विष्वविद्यालय, 44वाँ पुनर्मुद्रण, जनवरी 2017, पृ. 278,
2. लिच्छिवीद्वीहित्रस्य महादेव्यांकुमारदेवयामुत्पत्रस्यमहाराजाधिराजश्रीसमुद्रगुप्तस्य। 'महाराजा श्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराज चन्द्रगुप्तस्य....श्री समुद्रगुप्तस्य। –प्रयाग प्रशस्ति
3. चौधरी, राधाकृष्ण : प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, सप्तम परिषोधित संस्करण 1989, पुनः मुद्रण 2011, पृ. 261
4. सबनीस, एस.ए. कालिदास–हिज स्टाइल एण्ड हिज टाइम्स, बम्बई, 1966, पृ. 219–220
   गांगुली, डी.के., पूर्वोक्त, पृ. 292–293
5. रघुवंश, 17.48, 17.51 अपसर्पश्चरः स्पशः इति, रघुवंश, 14.31; चर अपसर्प प्राणिधि, कुमार संभव, 2.6, 17; गांगुली, डी.के., एस्पेक्ट्स ऑफ एन्सियन्ट इंडियन एडमिनिस्ट्रेशन, अभिनव पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1979, पृ. 292–293
6. योगी, श्री भारतीय, कौटलीय अर्थशास्त्र, 1/10, संस्कृति संस्थान, बरेली, 1973, पृ. 41; ऋग्वेद, 4.4.4
7. जॉली महोदय याज्ञवल्क्य धर्मशास्त्र का रचनाकाल चौथी शताब्दी मानते हैं, जबकि पी.पी. काणे उसका रचना काल 100 ई. से 300 ई. के बीच मानते हैं। जो भी हो ऐसा प्रतीत होता है कि याज्ञवल्क्य तथा कालिदास के बीच समय का अन्तराल बहुत कम था; गांगुली डी.के. पूर्वोक्त, पृ. 293

8. याज्ञवल्क्य स्मृति, सम्पा. स्टेन्नलर, बर्लिन, 1849, 1.338–338; उपाध्याय, बी.एस. इंडिया इन द ऐज ऑफ कालिदास, पृ. 165; रघुवंश, 1. 22, 17.48, 17.50
9. कामन्दकीय नीतिसार, 19.36, 19.38
10. कौ. अर्थ. 1/11 पृ. 42
11. तीक्ष्णः प्रवणिता चैव सत्री रसद एव च। कामन्दकीय, नीतिसार 19.38
12. कौ. अर्थ., 1/12 पृ. 45
13. स्वपन्नमि ही जागर्तिचर चक्षुर्महीपतिः। कामन्दकीय नीतिसार 19.29; ऋग्वेद 10/106/2
14. तर्कडगिटज्ञः स्मृतियान मृदुबधु परिक्रयः क्लेशायस सहो दक्षत्रचारः स्यात् प्रतिपतियान। कामन्दकीय नीतिसार 19.26; तपस्वी – लिगिनो धूर्ताः शिल्व पण्योपजीविनः, चारश्चरेयुः परितः पिवन्ते जगतां मतम्।। कामन्दकीय नीतिसार, 19.27; संज्ञाभिर्यतोच्छितेर–लेखयेराकारैर अपि, संचारये चर व्यग्राश्चारश्चमाम् परस्परम्। कामन्दकीय नीतिसार, 19.48
15. डेन्डेकर, श्री आर.एन., ए हिस्ट्री ऑफ द गुप्ताज, पृ. 30–35
16. मुद्राराक्षस, अंक–1, अंक–2
17. गांगुली डी.के., पूर्वोक्त, पृ. 294
18. शूद्रक कृत मृच्छकटिकम्, अंक–1
19. रैप्सन, जे.आर.ए.एस. 1893, पृ. 81; हैरास, ए.वी.ओ.आर.आई. 9,83; प्रयाग–प्रशस्ति के चतुर्थ श्लोक।
20. हूणैर्यस्य समागतस्य तमरे दोर्भ्या धरा कम्पिता भीमावर्तकरस्य। – स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तम्भ–लेख; नाहर, रतिभानु सिंह, पूर्वोक्त, पृ. 414